

अतः एक मुनिवरो की सूचना के आनुसार इस द्वितीयावृत्ति में संशोधन कर दिया गया है । पण्डित मुनिवरो ने इसके संशोधन करने की जो महती कृपा की है, इसके लिए हम उनके अत्यन्त आभारी हैं ।

प्रक संशोधन आदि की पूर्ण मावधानी रखते हुए भी दृष्टि दोष से कोई अशुद्धि रह गई हो तो पाठक गण शुद्ध कर पढ़ने की कृपा करें । कोई छापे सम्बन्धी या विषय सम्बन्धी अशुद्धि नजर आवे तो पाठक हमें सूचित करने की कृपा करें ताकि आगामी आवृत्ति में उचित संशोधन कर दिया जाय ।

निवेदक

चेवरचन्द्र ढाँटिया 'वीरपुत्र'

उपमन्त्री

श्री श्वे० सा० जैन हितकारिणी संस्था

वीकानेर

॥ श्री बीतरागाय नमः ॥

श्री जैनागम तत्त्व दीपिका

पदारविन्दोत्थ मरन्दकन्दभा-

गमन्द्युन्दारकवृन्दचन्द्रितम् ।

जिनं नमस्कृत्य जगज्जनायिनं,

तनोमि जैनागमतत्त्वदीपिकाम् ॥ १ ॥

भावार्थ—चरण कमलों में सहर्ष सिर झुकाते हुए
देवताओं से वन्दित तथा पट्टकायरूप जगन् के रक्षक
श्री जिन भगवान् को नमस्कार कर मैं (घासीलाल
मुनि) जैनागमतत्त्व दीपिका नामक ग्रन्थ रचता हूँ ॥१॥

पहला अध्याय

१ प्रश्न- द्रव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर- जो गुण और पर्याय का आधार हो उसे द्रव्य कहते हैं ।

२ प्र०- द्रव्य कितने हैं ?

उत्तर-अह- १ धर्मास्तिकाय, २ अधर्मास्तिकाय, ३ आकाशास्तिकाय, ४ काल, ५ जीवास्तिकाय, ६ पुद्गलास्तिकाय ।

३ प्र०- जीव किसे कहते हैं ?

उ०-जो द्रव्य प्राण और भाव प्राणों को धारण करे उसको जीव कहते हैं ।

४ प्र०- प्राण किसे कहते हैं ?

उ०-जिनकी वजह से जीव जीवित रहे उन्हें प्राण कहते हैं ।

५ प्र०-प्राण के कितने भेद हैं ?

उ०-दो भेद हैं-द्रव्य प्राण और भाव प्राण ।

६ प्र०-भाव-प्राण किसे कहते हैं ?

उ०-आत्मा के निज गुणों को भावप्राण कहते हैं ।

७ प्र०-भाव-प्राण के कितने भेद हैं ?

उ०-चार- ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य ।

८ प्र०-द्रव्य प्राण के कितने भेद हैं ?

उ०-दस भेद हैं:-१ श्रोत्रेन्द्रिय वल प्राण (कान),
२ चक्षुरिन्द्रिय वल प्राण (आंख), ३ घ्राणेन्द्रिय वल
प्राण (नाक), ४ रसनेन्द्रिय वल प्राण (जीभ), ५ स्पर्शने
न्द्रिय वल प्राण (त्वचा), ६ मनोवल प्राण, ७ वचन
वल प्राण, ८ काय वल प्राण, ९ श्वासोच्छ्वास वल
प्राण और १० आयुष्य वल प्राण ।

९ प्र०- जीव के कितने भेद हैं ?

उ०- दो भेद हैं:-सिद्ध और संसारी ।

३०-पांच हैं-१ श्रोत्रेन्द्रिय, २ चक्षुरिन्द्रिय, ३ घ्राणेन्द्रिय,
४ रसनेन्द्रिय, ५ स्पर्शनेन्द्रिय ।

२४ प्र०-एकेन्द्रिय जीव किसे कहते हैं ?

३०-जिसके सिर्फ एक स्पर्शन इन्द्रिय हो उसको एकेन्द्रिय जीव कहते हैं । जैसे पृथ्वीकाय, अक्काय, तेउकाय, वायुकाय और वनस्पतिकाय ।

२५ प्र०-त्रसजीव किसे कहते हैं ?

३०-जो जीव त्रस नाम कर्म के उदय से चल फिर सकते हैं अर्थात् सर्दी गर्मी आदि दुःखों से अपने को बचाने के लिए गमनागमन कर सकते हैं उनको त्रस जीव कहते हैं ।

२६ प्र०-त्रस के कितने भेद हैं ?

३०-चार भेद हैं-द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय ।

२७ प्र०-द्वीन्द्रिय जीव किसे कहते हैं ?

स्थलचर, खेचर, उरपरिसर्प, भुजपरिसर्प, इनके भेद संज्ञी (सत्री) और असंज्ञी (असत्री) के भेद से दस, इन दसों के पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से बीस । इस प्रकार अठारह और बीस मिल जाने से त्रियंश के अड़त्तीस भेद हुए ।

३८ प्र०- पृथ्वीकाय किसे कहते हैं ?

३०- खान से निकलने वाली सब वस्तु अर्थात् पृथ्वी ही जिसका शरीर हो, उसे पृथ्वीकाय कहते हैं। जैसे स्फटिक, मणि, रत्न, हिंगलु, हड़ताल, सोना, चांदी, तांबा लोहा, शीशा, मिट्टी, मुरड, खड़िया, गेरू इत्यादि ।

३९ प्र०- अप्काय किसे कहते हैं ?

३०-अपू (जल) ही जिसका शरीर है, उसे अप्काय कहते हैं जैसे तालाब का पानी, कुण का पानी, बावड़ी का पानी, ओले, ओस इत्यादि ।

४० प्र०- तेउ (तैजस्) काय किसे कहते हैं ?

नहीं, भेदने से भेदाय नहीं, अग्नि में जले नहीं, दूसरी वस्तु से रुके नहीं और दूसरी को रोके नहीं, ल्घ्वास्थ की नजर आवे नहीं और केवली भगवान् के ज्ञान गम्य हो, उसे सूक्ष्म कहते हैं ।

४५ प्र०- वादर किसे कहते हैं ?

उ०- जो वादर नामकर्म के उदय से वादर शरीर में रहते हैं अर्थात् जो काटने से कट जाय, छेदने से छिद जाय भेदने से भिद जाय, अग्नि में जल जाय, ल्घ्वास्थ के भी द्वाष्ट्रगोचर ही ।

४६ प्र०- वादर के कितने भेद हैं ?

उ०- दो भेद-साधारण और प्रत्येक ।

४७ प्र०- साधारण किसे कहते हैं ?

उ०- निगोद को साधारण कहते हैं ।

४८ प्र०- निगोद किसे कहते हैं ?

उ०- एक शरीर को आश्रित करके अनन्त जीव जिसमें

जिन्होंने कभी निगोद को नहीं छोड़ा हो, उन्हें अवग्रह-हार राशि कहते हैं।

५३ प्र०-वाटर और सूक्ष्म कौन कौन से जीव हैं ?

उ०-पृथ्वी, अप, तेज, वायु और निगोद ये पाँचों सूक्ष्म और वाटर दोनों प्रकार के होते हैं, दूसरे सब वाटर ही होते हैं।

५४ प्र०-सुई के अग्रभाग पर आवे, इतने निगोद में कितने जीव हैं ?

उ०-सुई के अग्र भाग पर आवे, इतने निगोद में असंख्यात प्रतर हैं, एक एक प्रतर में असंख्यात श्रेणियाँ हैं, एक एक श्रेणी में असंख्यात गोले हैं, एक एक गोले में असंख्यात शरीर हैं, एक एक शरीर में अनन्त जीव हैं।

५५ प्र०-मनुष्य किसे कहते हैं ?

उ०-मनुष्यगति नाम कर्म वाले को मनुष्य कहते हैं।

५६ प्र०-मनुष्य के कितने भेद हैं ?

उ०-३०३ भेद हैं- १५ कर्मभूमि, ३० अकर्मभूमि,

३०-अहमिन्द्रों को-अर्थान् जिनमें छोटे बड़ों
 1 भेद न हो उन्हें कल्पातीत कहते हैं ।

६८ प्र०-कल्पोपपन्न के कितने भेद हैं?

३०- कल्पोपपन्न देवों के बारह भेद हैं-१ सौधर्म
 ईशान ३ मनत्कुमार ४ माहेन्द्र ५ ब्रह्मलोक
 लान्तक ७ शुक्रसप्तहस्वार ८ आणत १० प्राणत
 १ आरण १२ अच्युत ।

६९ प्र०-तीन किल्बिषिक कहाँ रहते हैं?

३०- पहले दूसरे देवलोक के नीचे, तथा तीसरे
 देवलोक के नीचे, छठे देवलोक के नीचे, तीन
 किल्बिषिक रहते हैं । १ त्रिपल्योपमिक, २ त्रैसा-
 गरिक, ३ त्रयोदशसागरिक, ये उनके क्रमशः
 स्थिति के अनुसार नाम हैं ।

७० प्र०-कल्पातीत कितने प्रकार के हैं?

३०-कल्पातीत दो प्रकार के हैं-१ प्रैवेयक और
 २ अनुत्तर वैमानिक ।

परिणत करने और उग्रता आधार लेकर (प्रामाण्य प्राप्त करने) उसे पीछा छोड़ना है, उसकी पूर्णता को भावापर्याप्ति कहते हैं ।

८२ प्र०- भावापर्याप्ति किसे कहते हैं ?

उ०- जिस शक्ति से जीव भावापर्याप्ति के पुद्गलों को ग्रहण करके भावरूप परिणत करे और उग्रता आधार लेकर अनेक प्रकार की ध्वनि रूप में झोड़े, उसकी पूर्णता को भावापर्याप्ति कहते हैं ।

८३ प्र०- मनपर्याप्ति किसे कहते हैं ?

उ०- जिस शक्ति से मन के योग्य मनोवर्गण के पुद्गलों को ग्रहण करके मनरूप परिणत करे और उसकी शक्ति विशेष से उन पुद्गलों को पीछा छोड़े, उसकी पूर्णता को मनपर्याप्ति कहते हैं ।

८४ प्र०- ॐ भावेन्द्रिय किसे कहते हैं ?

उ०- लब्धि और उपयोग को भावेन्द्रिय कहते हैं ।

८५ प्र०- लब्धि किसे कहते हैं ?

उ०- ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से पंदा होने वाली शक्ति को लब्धि कहते हैं ।

८६ प्र०- उपयोग किसे कहते हैं ?

उ०- क्षयोपशम हेतुक आत्मा के चैतन्यरूप परिणाम विशेष को उपयोग कहते हैं ।

८७ प्र०- जीव कितना लम्बा चौड़ा है ?

उ०- प्रत्येक जीव प्रदेशों की अपेक्षा लोकाकाश के प्रदेशों जितना है किन्तु दीपक की तरह

ॐ द्रव्येन्द्रिय के प्रदनोत्तर पृष्ठ ६ में आ चुके हैं इस लिए यहां नहीं दिये हैं ।

संकोच विस्तार स्वभाव के कारण अपने शरीर के बराबर है। मुक्त जीव अन्तिम शरीर में त्रिभाग न्यून होता है।

८८ प्र०-आत्मा कितने प्रकार की है ?

३०-आठ प्रकार की। १ द्रव्य आत्मा २ रूपाय आत्मा ३ योग आत्मा ४ उपयोग आत्मा ५ ज्ञान आत्मा ६ दर्शन आत्मा ७ चारित्र आत्मा और ८ वीर्य आत्मा।

८९ प्र०-कौन आत्मा किसे होती है ?

३०-द्रव्य आत्मा, वीर्य आत्मा, दर्शन आत्मा, उपयोग आत्मा सब संसारी जीवों को होती हैं। रूपाय आत्मा मरुपायी जीवों को, योग आत्मा नयोवी जीवों को, ज्ञान आत्मा सम्यग्दृष्टि जीवों को और चारित्र आत्मा सर्वविरति मुनिगर्जों को होती हैं।

जैनागम तत्त्व दीपिका

(२६)

६० प्र०-समुच्चय (सर्व) जीवों में कितनी
आत्माएं होती हैं ?

उ०- ऊपर लिखी हुई आठों आत्माएं होती हैं ।

६१ प्र०- भव्य जीव में कितनी आत्माएं
होती हैं ?

उ०- आठों आत्माएं होती हैं ।

६२ प्र०- अभव्य जीव में कितनी आत्माएं
होती हैं ?

उ०- ब्रह्म-द्रव्यात्मा, कषयात्मा, योगात्मा,
अयोगात्मा, दर्शनात्मा, लब्धि वीर्यात्मा होती हैं ।
ज्ञानात्मा और चारित्र्यात्मा नहीं होती हैं ।

६३ प्र०- सिद्धों में कितनी आत्माएं
होती हैं ?

उ०- सिद्धों में चार आत्माएं होती हैं- द्रव्यात्मा,

ज्ञानयोग आत्मा, ज्ञान आत्मा (केवलज्ञानरूप)
दर्शन आत्मा (केवलदर्शनरूप) ।

६४ प्र०- जीव के लिए चार अङ्ग दुर्लभ
कौन कौन से हैं ?

उ०- १ मनुष्यत्व, २ वीतराग प्रणीत शास्त्र
का श्रवण, ३ सम्यक् श्रद्धा और ४ संयम में
पराक्रम कोटना ।

६५ प्र०- सुश्राख्यात धर्म किसे कहते हैं ?

उ०- समकित धर्म को सुश्राख्यात धर्म कहते हैं ।

शास्त्रों में आया है कि मिथ्यात्वी मास मास
खमण पारणा करे, और पारणा में कुशाग्र से
खावे, अथवा कुशाग्र प्रमाण मात्र अन्नादि खाकर
फिर मासखमण करदे, तो भी उसकी करण
सुश्राख्यात धर्म की सोलहवीं कला अर्थात्
समकित के सोलहवें अंश के बराबर भी नहीं है ।

३६ प्र०- धर्म की कितनी कलाएं हैं ?

३०-सोलह । १ चेतन की चेतना अक्षर के नन्वें भाग उवादी (प्रकट)रहे । २ यथाप्रवृत्ति गुण चढ़ते समय परिणामों की धारा का न्तोकोड़ाकोड़ी की मर्यादा में करना । ३ अपूर्व रण में गंठिभेद (प्रंथिभेद)करना । ४ अनिर्वृत्ति रण में मिथ्यात्व हटाना । ५ शुद्ध अद्धा-सम-न की प्राप्ति होना । ६ देशविरति-श्रावकपन की प्राप्ति होना । ७ सर्वविरति-साधुपन की प्राप्ति होना । ८ धर्मध्यान की शक्ति प्रकट करना ।

गुणश्रेणी क्षपक श्रेणी पर चढ़ना । १० अवेदी कर शुक्ल ध्यान पर चढ़ना । ११ सर्वथा लोभ व्य होने की आत्मज्योति प्रकट करना । १२ घन-तति-कर्म (१ ज्ञानावरणीय २ दर्शनावरणीय मोहनीय और ४ अन्तराय) का नाश करना ।

हैं। तिर्झालोक के मध्य भाग में एक लाख योज लम्बा चौड़ा विस्तार वाला जम्बूद्वीप है। जम्बूद्वीप के बीच में एक लाख योजन का मेरु पर्व एक हजार योजन पृथ्वी में और निन्यानवे हजार योजन ऊंचा है। चालीस योजन की चोटी है। जम्बूद्वीप में पूर्व से पश्चिम में लम्बे मेरु उत्तर और दक्षिण में छह पर्वत हैं। उनमें दक्षिण में १ चुल्लहिमवंत २ महाहिमवंत ३ निषध पर्वत हैं और उत्तर में १ शिब्य २ रूपी और ३ नीलवंत पर्वत हैं।

११६ प्र० - योजन कितना बड़ा होता है ?

३० - चार कोस का तथा चार हजार कं का एक योजन होता है।

११७ प्र० - किम योजन से कौनस वस्तु मापी जाती है ?

३०- शाश्वती वस्तु चार हजार कोस के योजन से मापी जाती है और अशाश्वती वस्तु चार कोस के योजन से। किन्तु सिद्ध क्षेत्र का योजन उत्सेधांगुल से चार कोस का माना जाता है। जम्बूद्वीप का भाग चार हजार कोस के योजन से एक लाख योजन का है।

११८ प्र० - अंगुल कितने प्रकार के हैं ?
 उत् - अंगुल तीन प्रकार के हैं - १ आत्मांगुल उत्सेधांगुल और ३ प्रमाणांगुल।

११९ प्र० - आत्मांगुल किसे कहते हैं ?
 उत् - जिस जिस काल में जो जो मनुष्य होते हैं उनके अंगुल को आत्मांगुल कहते हैं।

१२० प्र० - उत्सेधांगुल किसे कहते हैं ?
 उत् - पूर्व आधे पंचम आरे के मनुष्यों के अंगुल को उत्सेधांगुल कहते हैं।

नग्न शिखर है। इसके बाद चार लाख योजन विस्तार वाला धातकीखण्ड द्वीप है। वह लवण समुद्र को चारों ओर से घेरे हुए हैं। धातकीखण्ड के चारों ओर आठ लाख योजन विस्तार वाला कालोदधि समुद्र है। कालोदधि समुद्र को चारों ओर घेरे हुए सोलह लाख योजन विस्तार वाला पुष्करवर द्वीप है। पुष्करवर द्वीप के मध्य में मानुषोत्तर पर्वत है। यह पर्वत बिटे हुए सिंह के आकार का है। सतरह सौ इक्कीस (१७२१) योजन ऊंचा, चार सौ सवातीस (४३०१) योजन गहरा, एक हजार चार्दस (१०२२) योजन मूल में चौड़ा, सात सौ तेईस (७२३) मध्य में चौड़ा, चार सौ चौबीस (४२४) योजन ऊपर चौड़ा है। मानुषोत्तर पर्वत तक पैतालीस लाख योजन का मनुष्यक्षेत्र (अढाई द्वीप) है। इसे समय क्षेत्र भी कहते हैं। इससे आगे एक द्वीप एक समुद्र

के क्रम से असंख्यात द्वीप समुद्र हैं और अन्त में स्वयम्भूरमण समुद्र है।

१२८ प्र०- कर्मभूमि किसे कहते हैं ?

उ०- जहाँ असि (शस्त्रविद्या), मसि (लेखनविद्या) कृषि (सेवा, शिल्प, हुन्नर) और चाण्डाल्य आदि कर्मों की प्रवृत्ति हो उसे कर्मभूमि कहते हैं।

१२९ प्र०- अकर्म भूमि (भोग भूमि) किसे कहते हैं ?

उ०- जहाँ असि मसि आदि कर्मों की प्रवृत्ति न हो और कल्पवृक्षों से निर्वाह होता हो उसे अकर्मभूमि कहते हैं।

१३० प्र०- कल्पवृक्ष कितने प्रकार के होते हैं ?

उ०- कल्पवृक्ष दस प्रकार के होते हैं—१ मत्तंगा (मत्ताङ्गा) बलवीर्य बढ़ाने वाले पौष्टिक रस को

१३२ प्र० - अकर्मभूमियाँ कितनी हैं ?

उ०- अकर्मभूमियाँ तीस हैं । छह जम्बूद्वीप में—देवकुरु, उत्तरकुरु, हरिवास, रन्यकवास, हेरण्यवत, पेरवत । इससे दुगनी-वारह धातको-खण्ड में और वारह अर्द्ध-पुष्करवर द्वीप में हैं ।

१३३ प्र०- अन्तरद्वीप कितने और कहाँ हैं ?

उ०- अन्तरद्वीप छपन हैं । भरत क्षेत्र से उत्तर दिशा में चुल्लहिमवत पर्वत है, वह पूर्व से पश्चिम तक लवण समुद्र पर्यन्त लम्बा है । उसके पूर्व और पश्चिम में दो दो ❀ दाढ़ें निकली हुई

❀ दाढ़ाओं का कथन ग्रन्थों में मिलता है किन्तु शास्त्रों में नहीं हैं । दाढ़ाओं के आकार अन्तरद्वीप हैं ।

भी रूप में द्रव्यों के कायम रहने को ध्रौव्य कहते हैं ।

१८६ प्र०-गुण किसे कहते हैं ?

उ०- जो द्रव्य के आश्रित हो अर्थात् द्रव्य के सब अंशों और हालतों में रहे, उसे गुण कहते हैं ।

१६० प्र०-गुण कितनी तरह के होते हैं ?

उ०- गुण दो तरह के होते हैं- १ सामान्य गुण और २ विशेष गुण ।

१६१ प्र०-सामान्य गुण किसे कहते हैं ?

उ०- जो सामान्यतया सब द्रव्यों में रहे, उसे सामान्य गुण कहते हैं ।

१६२ प्र०-विशेष गुण किसे कहते हैं ?

उ०- जो सब द्रव्यों में न रहे, किसी विशेष



२०२ प्र० - गन्ध कितने प्रकार का है ?

उ०- दो प्रकार का—१ सुरभिगन्ध ०
दुरभिगन्ध

२०३ प्र०- रस कितने प्रकार का है ?

उ०- रस पांच प्रकार का है—१ तिक्त २ कटु
३ कषाय ४ अम्ल ५ मधुर ।

२०४ प्र०- स्पर्श कितने प्रकार का है ?

उ०- स्पर्श आठ प्रकार का है—१ गुरु २ लघु
३ मृदु ४ खर ५ शीत ६ उष्ण ७ स्निग्ध ८ सूक्ष्म ।

२०५ प्र०- सम्यक्त्व किसे कहते हैं ?

उ०- जीवादि तत्त्वों के यथार्थ स्वरूप
को जान कर उन पर श्रद्धा करना सम्यक्त्व है ।

२०६ प्र०- सम्यक्त्व के कितने भेद हैं ?

उ०- दो भेद— व्यवहार सम्यक्त्व और

निश्चय सम्यक्त्व ।

२०७ प्र०- ज्ञानकार सम्यक्त्व किसे कहते हैं ?

उ०- गुणेश, गुरुगुरु और गुरुगुरु पर विश्वास करना ।

२०८ प्र०- निश्चय सम्यक्त्व किसे कहते हैं ?

उ०- देव समकित (श्रद्धा), गुरु ज्ञान और धर्म चारित्र, इनमें निःशंक भ्रष्टा होना निश्चय सम्यक्त्व है । यस्तुतः निज आत्मा ही देव गुरु धर्म है ।

२०९ प्र०- सम्यक्त्व कैसे जाना जाता है ?

उ०- पाँच लक्षणों से— १ सम २ संवेग, ३ निर्वेद, ४ अनुकम्पा, ५ आस्तिक्य ।

सन्नेपरुचि कहते हैं।

२२६ प्र ०- धर्मरुचि किसे कहते हैं ?

उ०- श्रुतधर्म और चारित्रधर्म को आराध
करते करते जो सम्यक्त्व हो उसे धर्मरुचि कहते

२२७ प्र ०- अनादिकालीन मिथ्यादृष्टि
सम्यक्त्व कैसे प्राप्त होता है ?

उ०- काललब्धि पाकर तीन करण करत
तो सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है।

२२८ प्र ०- काललब्धि किसे कहते हैं

उ०- जैसे कोई पत्थर नदी में बहता हुआ
टकरा टकरा कर बहुत काल के बाद गोल मट्ट
हो जाता है, इसी प्रकार यह जीव अव्यवहार राशि
से व्यवहार राशि, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय आदिपर्या
में परिभ्रमण करते हुए अनन्त जन्म मरण क
करते अकाम निर्जरा करते हुए जितने समय

वाद संज्ञी पंचेन्द्रियपना पाता है, उस काल को काललब्धि कहते हैं ।

२२६ प्र०- करण किसे कहते हैं ?

उ०- आत्मा के परिणाम विशेष को करण कहते हैं ।

२३० प्र०- करण कितने प्रकार के हैं ?

उ०- करण तीन प्रकार के हैं - यथाप्रवृत्ति करण , २ अपूर्व करण, ३ अनिवृत्ति करण ।

२३१ प्र०- यथाप्रवृत्ति करण किसे कहते हैं ?

उ०- ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, नाम, गोत्र और अन्तराय, इन सातों कर्मों की दो सौ दस सागरोपम की स्थिति है उस में से दो सौ नव कोडाकोडी स्थिति खपा कर कुछ कम एक कोडाकोडी सागरोपम की स्थिति करने वाले आत्मा के परिणाम को यथाप्रवृत्ति करण

मोहनीय, उन सात प्रकृतियों के ज्ञय से होने वाले परिणाम को ज्ञायिक समकित कहते हैं।

२४१ प्र०- मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उ०- मिथ्यात्व मोहनीय के उदय से विपरीत श्रद्धान रूप जीव के परिणाम को मिथ्यात्व कहते हैं

२४२ प्र०- मिथ्यात्व के कितने भेद हैं ?

उ०- पाँच हैं- आभिग्रहिक, अनाभिग्रहिक, आभिनिवेशिक, सांशयिक, अनाभोगिक ।

२४३ प्र०- आभिग्रहिक मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उ०- तत्त्व की परीक्षा किये बिना ही पक्षपात-पूर्वक एक सिद्धान्त का आग्रह करना और अन्य पक्ष का खण्डन करना आभिग्रहिक मिथ्यात्व है। लोह वगिक की तरह ।

२४४ प्र०- अनाभिग्रहिक मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उ०- गुण दोष की परीक्षा किये बिना ही सब पक्षों को बराबर समझना अनाभिग्रहिक मिथ्यात्व है। बालक की तरह।

४५ प्र०-आभिनिवेशिक मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उ०- अपने पक्ष को असत्य जानते हुए भी उसकी स्थापना के लिए दुरभिनिवेश (दुराग्रह-दृढ) करना तथा दूसरे को उसमें खींचना आभिनिवेशिक मिथ्यात्व है।

२४६ प्र०-सांशयिक मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उ०- इस स्वरूप वाला देव होगा या अन्य स्वरूप का ? इसी तरह गुरु और धर्म के विषय में सन्देहशील बने रहना सांशयिक मिथ्यात्व है।

२४७ प्र०- अनाभोगिक मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उ०- विचार शून्य एकेन्द्रियादि तथा विशेष ज्ञानविकल जीवों के जो मिथ्यात्व होता है वह अनाभोगिक मिथ्यात्व कहा जाता है ।

उपरोक्त पांच मिथ्यात्वों में से पहले के चार मिथ्यात्व संज्ञी के ही होते हैं । पाँचवाँ अनाभोगिक मिथ्यात्व संज्ञी असंज्ञी दोनों के होता है-

२४८ प्र०- मिथ्यात्व के दस भेद कौन कौन से हैं ?

उ०- १ जीव को अजीव श्रद्धना, २ अजीव को जीव श्रद्धना, ३ धर्म को अधर्म श्रद्धना, ४ अधर्म को धर्म श्रद्धना, ५ साधु को असाधु श्रद्धना, ६ असाधु को साधु श्रद्धना, ७ संसार के मार्ग को मोक्ष का मार्ग श्रद्धना, ८ मोक्ष के मार्ग को

संसार का मार्ग श्रद्धना, ६ कर्मों से मुक्त को अमुक्त श्रद्धना, १० अमुक्त को मुक्त श्रद्धना ।

२४६ प्र०- मिथ्यादृष्टि किसे कहते हैं ?

उ०- जो सद्गुरुउपदिष्ट प्रवचन को न श्रद्धे उसे मिथ्यादृष्टि कहते हैं ।

२५० प्र०-जीव के असाधारण पारिणामिक भाव कितने हैं ?

उ०- तीन- १ जीवत्व २ भव्यत्व ३ अभव्यत्व ।

२५१ प्र०- जीवत्व गुण किसे कहते हैं ?

उ०-जिस शक्ति से आत्मा प्राणों को धारण करे उसे जीवत्व गुण कहते हैं ।

२५२ प्र०-भव्यत्व गुण किसे कहते हैं ?

उ०- जिस शक्ति से आत्मा को सम्यक्त्व की प्राप्ति हो उसे भव्यत्व गुण कहते हैं ?

२५३ प्र०-अभाव्यत्व गुण किसे कहते हैं?

उ०- जिग गुण के कारण आत्मा में सम्यक्त्व पाने की योग्यता न हो उसे अभाव्यत्व गुण कहते हैं।

२५४ प्र०-अनुजीवी गुण किसे कहते हैं?

उ०- भावस्वरूप गुणों को अनुजीवी गुण कहते हैं, जैसे- सम्यक्त्व, चारित्र, सुख आदि।

२५५ प्र०-प्रतिजीवी गुण किसे कहते हैं?

उ०-अभावस्वरूप गुणों को प्रतिजीवी गुण कहते हैं। जैसे-नास्तित्व अमूर्तत्व, अचेतनत्व आदि

२५६ प्र०-अभाव किसे कहते हैं ?

उ०-एक पदार्थ का दूसरे पदार्थ में न पाया जाना अभाव है । जैसे — घट का वस्त्र में, वस्त्र का घट में अभाव है ।

१- अशुभ क्रियाओं को छोड़ना और शुभ
 कर्मों में प्रवृत्त होना व्रत कहलाता है ।

७ प्र०- व्रत कितने प्रकार के हैं ?

प्रकार के हैं ? महाव्रत और २ आणुव्रत ।

८ प्र०- महाव्रत किसे कहते हैं ?

०- सर्व विरति को महाव्रत कहते हैं ।

१६ प्र०- महाव्रत कितने हैं ?

महाव्रत पांच हैं ? अहिंसा महाव्रत २ सत्य
 त ३ अदत्तादाननिवृत्ति महाव्रत ४ ब्रह्मचर्य
 त ५ परिग्रहपरित्याग महाव्रत ।

२० प्र०- अहिंसा महाव्रत किसे कहते हैं ?

३०- तीन कारण तीन योग से हिंसा का त्याग
 अहिंसा महाव्रत है ।

२१ प्र०- सत्य महाव्रत किसे कहते हैं ?

३०- तीन कारण तीन योग से असत्य का त्याग

३० - काया की शुभाशुभ प्रवृत्ति को काय योग कहते हैं ।

२६१ प्र०- आचार किसे कहते हैं ?

३०- ज्ञान आदि की आग्नेयता को आचार कहते हैं ।

२६२ प्र०- आचार कितने हैं ?

आचार पाँच हैं ? ज्ञानाचार २ दर्शनाचार
३ चारित्राचार ४ तप आचार ५ वीर्याचार ।

२६३ प्र०- गुप्ति किसे कहते हैं ?

३०- योग का सम्यक् प्रकार निमज्ज करना गुप्ति है ।

२६४ प्र०- गुप्ति के कितने भेद हैं ?

३०- गुप्ति तीन हैं ? मनोगुप्ति २ वचनगुप्ति
३ स्थायगुप्ति ।

२६५प्र०- मनोगुप्ति किसे कहते हैं ?

उ०- सम्यक् प्रकार मन का निग्रह करना मनोगुप्ति है ।

२६६प्र०- वचन गुप्ति किसे कहते हैं ?

उ०- वचन का सम्यक् प्रकार निग्रह करना वचन गुप्ति है ।

२६७प्र०- कायगुप्ति किसे कहते हैं ?

उ०- काया का सम्यक् प्रकार निग्रह करना कायगुप्ति है ।

२६८प्र०- संरम्भ किसे कहते हैं ?

उ०- मन में हिंसादि का संकल्प करना ।

२६९प्र०- समारम्भ किसे कहते हैं ?

उ०- सामग्री जुटाने को समारम्भ कहते हैं ।

३००प्र०- आरम्भ किसे कहते हैं ?

उ०- हिंसा करना आरम्भ कहलाता है ।

(लेने में विशुद्धि) ३ परिभोगैपणा (आहार के परिभोगने में विशुद्धि) ।

३०६ प्र०- आहार के कितने दोष हैं ?

उ०- आहार के सैंतालीस दोष हैं - १६ उद्गम दोष (गृहस्थ के द्वारा लगने वाले), १६ उत्पादना दोष (साधु के द्वारा लगने वाले), १० एपणा दोष (साधु और दाता दोनों से लगने वाले) ५ मंडल दोष (आहार करते समय सिर्फ साधु से लगने वाले) ।

३१० प्र०- सोलह उद्गम दोष कौन कौन से हैं ?

उ०- १ आहाकम्म २ उद्देसिय ३ पूईकम्म ४ मीसजाण ५ ठवणे ६ पाहुडियाण ७ पाओअर ८ फीए ९ पामिच्चे १० परियट्टाण ११ अभिहडे १२ उट्ठिभरणे १३ मालाहडे १४ अच्चिञ्जजे १५ अण्णिसिट्ठे १६ अज्झोयराण ।

३११ प्र०- सोलह उत्पादना दोष कौन कौन से हैं ?

उ०- १ धार्द्र २ दृष्टि ३ निमित्ते ४ आजीवे
५ वणीमणे ६ तिगिच्छे ७ कोष्टे ८ माणे ९ माचे
१० लोभे ११ पुच्चिंपच्छा संधवे १२ विजा १३
मंते १४ चुण्णे १५ जोगे १६ सोलसमे मूलकम्मे।

३१२ प्र०- दस एषणा दोष कौन कौन से हैं ?

उ०- १ संक्रिय २ मक्खिय ३ निक्खित्त ४
पिहिय ५ साहरिय ६ दायग ७ उम्मीसे ८ अप-
रिणय ९ लित्त १० छट्टिय ।

३१३ प्र०- पाँच मंडल दोष कौन कौन से हैं ?

उ०- १ संजोयणा २ अप्पमाणे ३ इंगाले ४
धूमे ५ अकारणे ।

२०- अन्धकार में प्रकाश करके साधु को देना पात्रोत्तर दोष है।

३२१ प्र०- कीर्ण (क्रीत) किसे कहते हैं ?

उ०- मोल गरीब कर साधु को देना क्रीत दोष है।

३२२ प्र०- पामिच्चे (ग्रामित्य) दोष किसे कहते हैं ?

उ०- साधु के निमित्त उधार लेकर देना पामिच्चे दोष है।

३२३ प्र०- परियट्टण (परावृत्य) दोष किसे कहते हैं ?

उ०- साधु के लिए सरस नीरस वस्तु को अदल बदल कर देना परियट्टण दोष है।

३२४ प्र०- अभिहडे (अभ्याहृत) दोष किसे कहते हैं ?

उ०- किसी अन्य ग्राम या घर आदि से मुनि के सामने लाकर देना अभिहडे दोष है ।

३२५ प्र०- उच्चिभरणे (उच्चिन्न) दोष किसे कहते हैं ?

उ०- भोग्यरे तथा वर्तन आदि में मिट्टी आदि से छाप हुए (छांदण दिये हुए) पदार्थ को उघाड़ कर देना उच्चिभरणे दोष है ।

३२६ प्र०- मालाहडे (मालाहृत) दोष किसे कहते हैं ?

उ०- उपर चढ़कर कठिनता से उतार कर देना, इसी प्रकार बहुत नीचे से भी कठिनता से निकाल कर देना मालाहडे दोष है ।

३७२ प्र०- सिद्धों के कितने भेद हैं?

उ०- सिद्धों के पन्द्रह भेद हैं- १ तीर्थसिद्ध, २ अतीर्थसिद्ध, ३ तीर्थङ्करसिद्ध, ४ अतीर्थङ्करसिद्ध, ५ स्वयंचुद्ध सिद्ध, ६ प्रत्येकचुद्धसिद्ध, ७ बुद्धचोदित सिद्ध, ८ स्त्रीलिङ्गसिद्ध, ९ पुरुषलिङ्गसिद्ध, १० नपुंसकलिङ्ग सिद्ध, ११ स्वलिङ्ग सिद्ध, १२ अन्यलिङ्गसिद्ध, १३ गृहलिङ्गसिद्ध, १४ एकसिद्ध, १५ अनेक सिद्ध ।

३७३ प्र०- (१) तीर्थसिद्ध किसे कहते हैं?

उ०- तीर्थङ्कर के संघ स्थापन करने के अथवा प्रथम गणधर के उत्पन्न होने के बाद जो सिद्ध हुए हैं उन्हें तीर्थसिद्ध कहते हैं जैसे प्रथम गणधर ऋषभसेन और गौतम स्वामी आदि ।

३७४ प्र०- (२) अतीर्थसिद्ध किसे कहते हैं?

उ०- तीर्थ (संघ) के उत्पन्न न होने पर अथवा

तीर्थ में तीर्थ का विच्छेद होने पर जो सिद्ध हुए हैं उन्हें अतीर्थ सिद्ध कहते हैं जैसे मरुदेवी आदि ।

३७५ प्र०-(३) तीर्थद्वर सिद्ध किसे कहते हैं ?

उ०- जो तीर्थद्वर होकर अर्थात् माधु साध्वी श्रायक श्राविका रूप चार तीर्थों की स्थापना करके सिद्ध हुए हैं उन्हें तीर्थद्वर सिद्ध कहते हैं । जैसे २५ चौबीस तीर्थद्वर भगवान् ।

३७६ प्र०-(४) अतीर्थद्वर सिद्ध किसे कहते हैं ?

उ०- जो सामान्य केवली होकर सिद्ध हुए हैं उन्हें अतीर्थ सिद्ध कहते हैं । जैसे गौतम स्वामी ।

३७७ प्र०-(५) स्वयम्बुद्ध सिद्ध किसे कहते हैं ?

उ०- जो स्वये-जातिस्मरणादि ज्ञान से तत्त्व जानकर सिद्ध हुए हैं उन्हें स्वयंबुद्ध सिद्ध कहते हैं । जैसे मृगापुत्र आदि ।

३७८ प्र०-(६) प्रत्येकबुद्ध सिद्ध किसे कहते हैं ?

३७- जो पातानिमित्त-गृपभादि-को देव-
पोष प्राप्त करके सिद्ध हुए हैं उन्हें प्रत्येक बु-
सिद्ध कहते हैं। जैसे करकण्डू आदि।

३७६ प्र०-(७) बुद्धबोधित सिद्ध किसे कहते?

उ०- जो धर्माचार्यों से बोध पाकर सिद्ध हुए
हैं उन्हें बुद्धबोधित सिद्ध कहते हैं। जैसे मेघ-
कुमार आदि।

३८० प्र०-(८) स्त्रीलिङ्ग सिद्ध किसे कहते हैं?

उ०- जो स्त्रीशरीर से सिद्ध हुए हैं उन्हें स्त्री-
लिङ्ग सिद्ध कहते हैं। जैसे चन्द्रनवाला आदि।

३८१ प्र०-(९) पुरुपलिङ्ग सिद्ध किसे कहते हैं?

उ०- जो पुरुष शरीर से सिद्ध हुए हैं उन्हें
पुरुपलिङ्ग सिद्ध कहते हैं। जैसे गणधर आदि।

३८२ प्र०-(१०) नपुंसकलिङ्ग सिद्ध किसे
कहते हैं?

३०- जो नपुंसक शरीर से सिद्ध हुए हैं उन्हें नपुंसक लिङ्ग सिद्ध कहते हैं। जैसे गाङ्गेय प्रनगार आदि।

३८३ प्र०-(११) स्वलिङ्ग सिद्ध किसे कहते हैं?

३०- जो मुखवस्त्रिका रजोहरण आदि मुनिलिङ्ग से सिद्ध हुए हैं उन्हें स्वलिङ्ग सिद्ध कहते हैं। जैसे आदिनाथ भगवान् के साथ दस हजार मुनि सिद्ध हुए।

३८४ प्र०-(१२) अन्यलिङ्ग सिद्ध किसे कहते हैं ?

३०- जो अन्यमत (संन्यासी आदि) के लिंग से सिद्ध हुए हैं उन्हें अन्य लिङ्ग सिद्ध कहते हैं जैसे शिवराज ऋषि आदि।

३८५ प्र०-(१३) गृहिलिङ्ग सिद्ध किसे कहते हैं ?

सहायता न चाहना, ३ मनुष्य, तियञ्च और देवता के उपसर्ग आने पर भी धर्म में दृढ़ रहना, ४ जिन, धर्म में शंका कांक्षा विचिकित्सा न करना, ५ जिनवर्गी में उपयोग सहित श्रद्धा करना; ६ जिन धर्म में हाड़ हाड़ की मिंजी रंगना, ७ अविश्वासी के घर नहीं जाना, ८ दान देने के लिए सदा

६ लज्जालुता १० दयालुता ११ सौम्यदृष्टिपन (शान्त नजर) १२ अमत्सरता (ईर्ष्या न करना) गुणानुरागिता १४ सत्यवादिपन १५ सुरक्षता (न्याय पक्ष का प्रहण) १६ दीर्घदेशिता (आगे पीछे का गहरा विचार करना) १७ विशेषज्ञता (प्रत्येक तत्त्व को वारीक रीति से जानना) १८ वृद्धानुगतता (शिष्टों की परम्परा का पालन करना) १९ विनियता (विनियवान् होना) २० कृतज्ञता (दूसरों से किये हुए उपकार को न भूलना) २१ परहित-

रने में और भी पार्यनाथजी परिचय देने में समर्थ हैं। इस प्रकार अनेक विषयों में पलायन होने के कारण भूत दोष को चला दोष कहते हैं।

४६८ प्र०- मल दोष कितने कहते हैं ?

उ०- जैसे निर्मल सूर्यगो भी मल के कारण मलिन कहा जाता है, वैसे ही जिस के कारण मन्थगदर्शन में क्लेशग्रथन की तरंग से मलिनता आजाये उसे मल दोष कहते हैं।

४६९ प्र०- अनाद दोष कितने कहते हैं ?

उ०- जैसे बृद्ध पुत्र के साथ में रही हुई लाली कौपती है, वैसे ही जिस मन्थगदर्शन के होने हुए भी 'यद् मेरा शिष्य है, यद् उत्तका शिष्य है' इत्यादि भेद भाव निम्नसे हो उसे अनाद दोष कहते हैं।

४७० प्र०- मिश्र मोक्षनीय कितने कहते हैं ?

उ०- जिस काम के उदय से जीव की मिश्र

१४ प्र०- नोकपाय किसे कहते हैं ?

उ०- कम कपाय को- अर्थात् कपाय को उत्त-
(प्रेरित) करने वाले हास्य आदि को नोक
। कहते हैं ।

१५ प्र०- कपाय के कितने भेद हैं ?

उ०- मोलह- ४ अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान,
या, लोभ, ४ अप्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया,
म, ४ प्रत्याख्यानघरण क्रोध, मान, माया,
म, ४ संश्रलन क्रोध, मान, माया, लोभ = १६ ।

१६ प्र०- अनन्तानुबन्धी चौकड़ी (क्रोध,
मान, माया, लोभ) किसे कहते हैं ?

उ०- जो जीव के सन्यस्त्यगुण को नष्ट करके
प्रसन्नकाल तत्र संसार में परिश्रमण करावे उसे
अनन्तानुबन्धी चौकड़ी कहते हैं ।

..... प्र०- अप्रत्याख्यान चौकड़ी किसे

सर्गाय नौ, मोहनीय कद्रादेय, अन्ताराय पाँच,
 गोत्र दो, वेदनीय दो, तीर्थद्वार नाम कर्म एक,
 अश्वशामनाम कर्म एक, सादर० एक, मूदम०
 एक, पर्याप्त० एक, अपर्याप्त० एक, सुखर० एक,
 दुस्वर० एक, आदेय० एक, अनादेय० एक, यशः
 क्षीति० एक, अयशःक्षीति० एक, प्रस० एक,
 व्यावर० एक, प्रशस्तविहायोगति, अपशस्तविहायो-
 गति एक, सुमग एक, दुभंग एक, गति चार,
 जाति पाँच, इस प्रकार से ७८ अठारह द्वा।
 १७० प्र०-पुत्रगल विपाकी कर्म किसे कहते हैं ?

३०- जिसका कल पुत्रल में हो उसे पुत्रल
 विपाकी कर्म कहते हैं ।

५७१ प्र०-पुत्रगल विपाकी कर्म प्रकृति
 के कितने भेद हैं ?

३०- २६ हैं । ये इस प्रकार हैं- ५ शरीर, ३

५७७ प्र०- पाप प्रकृति के कितने भेद हैं ?

उ०- ८२ भेद हैं- ज्ञानावरणीय ५, अन्तराय ५, दर्शनावरणीय ६, नीच गोत्र, असाता वेदनीय, मिथ्यात्वमोहनीय, स्थावर दशक १०, नरकयु, नरकगति, नरकानुपूर्वी, कषाय १६, नोकषाय ६, तिर्यगति, तिर्यगानुपूर्वी, पञ्चेन्द्रिय जाति के सिवाय चार जाति ४, अशुभविहायोगति, उपघात, अप्रशस्त वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, प्रथम संहनन के सिवाय पांच संहनन और प्रथम संस्थान को छोड़कर बाकी के पांच संस्थान।

५७८ प्र०- ज्ञानावरणीय आदि की उत्कृष्ट तथा अधन्य स्थिति कितनी है ?

उ०- ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय और अन्तराय की स्थिति तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम की है। मोहनीय की सत्तर कोड़ाकोड़ी

सागण्डम की है, नाम और गौर की बीस कोड़ा-
 कंदी सागण्डम की है और आमुप व में की
 द्वैतीय सागण्डम की आहृष्टिपिदि है । अथ-
 विनि आनावरक्षीय, दंतनाथक्षीय, शीतलीय
 आमुप और अन्तराय की अन्तर्मुहूर्त की है ।
 वेदनीय की आहृष्टि मुहूर्त की है, नाम और गौर की
 आठ मुहूर्त की है ।

५७६ प्र०-पक्षीस क्रियाएँ कौन कौन सी हैं ?

पक्षीस क्रियाएँ ये हैं—(१) आधिक्य—आमा-
 यधानी के कारण शरीर के उपकार से लगने-
 वाली क्रिया । (२) अपिहरणिकी—शिरस क्रिया
 से जीव नरक में जाने का अपिहारी बने ।
 (३) प्राद्वेषिकी—जीव और अजीव पर द्वेष
 करने से लगने वाली क्रिया । (४) पाठिषापनिही-
 अथने और दूसरे को पठिषाप (नरसीक) पशुवाने



आत्म प्रदेशों का अन्य रूप में परिणमन होना, उसको समुद्घात कहते हैं ।

५८१ प्र०- समुद्घात कितने प्रकार का है ?

उ०- सात प्रकार का- १ वेदना २ कपाय
३ मारणान्तिक ४ वैक्रिय ५ आहारक ६ तैजस
७ केवलिसमुद्घात ।

५८२ प्र०- वेदना समुद्घात किसे कहते हैं ?

उ०- अधिक दुःख होने पर आत्मा के प्रदेशों को बाहर निकालते हुए कर्मांशों की निर्जरा करना वेदना समुद्घात है ।

५८३ प्र०- कपाय समुद्घात किसे कहते हैं ?

उ०- क्रोध आदि कपायों के तीव्र उदय होने से मूल शरीर को बिना छोड़े आत्म प्रदेशों को बाहर निकालते हुए कर्मांशों की निर्जरा करना कपाय समुद्घात है ।

प्रमाण करते हैं। इस विषय में विशेष बात यह है कि जो मोक्षन प्राप्त कर उनके ही लिए बनाया गया हो अथवा हमारे माधु के लिए बनाया गया हो हम को जो वे नहीं लेते, घूम घूम कर मत्त कर शक्ति से विभ्रान्त करते हैं।

(१) जगह—

३०- जैन मुनि निरवश मकान में ही विश्राम करते हैं वे पंरो मकान में कभी नहीं ठहरते जो उनके लिए बनाया गया हो।

(२) मासकल्पादिविहार—

३०- जैन मुनि बहुत दिनों तक एक जगह नहीं ठहरते, इसी सिद्धान्त के अनुसार वे मासकल्पादि विहार करते हैं परन्तु चातुर्मास अर्थात् षाषाढ़ सुदी १४ से कार्तिक मन्थे ०५ तक तक जगह रहते हैं।

अश्व जन्म लेता है न रामभ ही । किन्तु वेमर
 (मृगर) रूप जात्यन्तर पैदा होता । उसी प्रकार
 सर्वज्ञप्रणीत और असर्वज्ञप्रणीत रूप दोनों धर्मों
 में श्रद्धा रूप परिणाम को मिश्र गुणस्थान कहते
 हैं । इसकी स्थिति अन्तमुहूर्त की है । इस
 गुणस्थान में न मृत्यु होती है न आयु-बन्ध
 होता है ।

६१७ प्र०- अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान
 किसे कहते हैं ।

उ०- जो जिनेन्द्रकथित षड्धर्मों पर श्रद्धान
 करता है किन्तु किसी प्रकार का धर्म धारण नहीं
 करता, इस प्रकार की अवस्था को अविरति
 सम्यग्दृष्टि गुणस्थान कहते हैं । अविरतसम्यग्दृष्टि
 जीव यद्यपि सांसारिक विषय भोगों को हेय समझता
 है और देशविरति को उपादेय समझता है किन्तु

ये अणु जो शेष नती करते ऐसे गंगा गुनि
 को अणु को अणु गंगा गुणस्थान कहते
 हैं । अणुके विभिन्न अणु एक समय और अणु
 विभिन्न अणुकी है ।

६२१ प्र०- नियति (निवृत्ति) बादर
 गुणस्थान किसे कहते हैं ?

उ०- जिसकी बादर कण (तीन चौकड़ी
 और संयतन के कोन मान) निवृत्त हो गई
 हो, ऐसे जीव की अवस्था को नियति बादर
 गुणस्थान कहते हैं । इस गुणस्थान से दो श्रेणी
 प्रारम्भ होती हैं, १ उपशम श्रेणी और २ क्षपक-
 श्रेणी । उपशम श्रेणी वाला जीव मोहनीय की
 प्रकृतियों का उपशम करता हुआ ग्यारहवें गुण-
 स्थान तक जाता है और क्षपक श्रेणी वाला जीव
 दसवें से सीधा बारहवें गुणस्थान में जाकर
 अपविद्यार्थ (अप्रतिपाती) हो जाता है ।

६२२ प्र०- अनियट्टि (अनिवृत्ति) चादर
गुणस्थान किसे कहते हैं ?

७०- संज्वलन माया कषाय से निवृत्ति जहाँ न हुई हो ऐसी अवस्था विशेष को अनियट्टि-चादर कहते हैं। और आठवें गुणस्थानवर्ती जीवों के परिणाम लोकाकाश के असंख्यात प्रदेशों के बराबर असंख्यात होते हैं। क्योंकि इसकी स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है और अन्तर्मुहूर्त के असंख्यात समय हैं। नववें गुणस्थानवर्ती सब जीवों के परिणाम सदृश ही होते हैं, क्योंकि वहाँ के जीवों की समान शुद्धि है अतः उनके परिणाम भी एक ही वर्ग के होते हैं। आठवें गुणस्थान में चारित्र मोहनीय के उपशमन या क्षपण की योग्यता प्राप्त हो जाती है, और नववें गुणस्थान में उपशमन या क्षपण का प्रारम्भ होता है।

क्षयोपशम होता है। आठवें में पूर्वोक्त सोलह और संज्वलन मान इस प्रकार सतरह प्रकृतियों का उपशमश्रेणी वाला उपशम करता है और क्षयश्रेणी वाला क्षय करता है। इसी प्रकार नववें में और दसवें में समझना चाहिए। नववें में पूर्वोक्त सतरह और संज्वलन माया, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद, इन इक्कीस प्रकृतियों का क्षय या उपशम करता है। दसवें में पूर्वोक्त इक्कीस, हास्य, रति, अरति, भय, शोक, जुगुप्सा (दुःखुच्छा) इन सत्ताईस, प्रकृतियों का क्षय या उपशम होता है। ग्यारहवें में पूर्वोक्त सत्ताईस और संज्वलन लोभ इन अट्ठाईस प्रकृतियों का उपशम करता है। बारहवें में इन अट्ठाईस प्रकृतियों का क्षय करता है। बारहवें के अन्त में बचे हुए तीन घनवातिया कर्मों का नाश करके

हेतुओं में अनन्त ज्ञान क्षति, अनन्त लाभ क्षति, अनन्त मोग क्षति, अनन्त व्यभोग क्षति, अनन्तवीर्य क्षति, अनन्त ज्ञान क्षति, अनन्त दर्शन क्षति, अनन्त धार्मिक समर्पित, अनन्त चारित्र्य क्षति और शुद्ध ध्यान इन गुणों की प्राप्ति होती है। शरीरद्वयें सुखस्थान में योग का निरोध करके शैलीशी अथवा को प्राप्त करते हैं और बाकी घने हुए चार घातिया (वेदनीय, आयु. नाम. गोत्र) कर्मों को नष्ट करके मोक्ष को प्राप्त करते हैं और लोक के अग्रभाग में सिद्धगति में विराजमान होकर अनन्त आरामसुखामृत का अनुभव करते हुए अक्षय स्थिति पाते हैं।

॥ इति सातव्यां अध्यायं संपूर्णं ॥

आठवां अध्याय

६४१ प्र०- प्रमाण ज्ञान किसे कहते हैं ?

उ०- जो ज्ञान स्व और पर का यथावस्थित स्वरूप का निश्चय करता है, उसे प्रमाणज्ञान कहते हैं ।

६४२ प्र०- लक्षण किसे कहते हैं ?

उ०- पदार्थ के असाधारण धर्म को लक्षण कहते हैं । जैसे जीव का लक्षण चेतना ।

६४३ प्र०- असाधारण धर्म किसे कहते हैं ?

उ०- जो धर्म दूसरे में न मिले । जैसे चेतना धर्म जीव को छोड़कर दूसरे में नहीं मिलता, इससे चेतना जीव का असाधारण धर्म है ।

६४४ प्र०- लक्षणाभास किसे कहते हैं ?

उ०- दोष वाले लक्षण को लक्षणाभास कहते हैं ।

६४५ प्र०- लक्ष्य के किलने दोष हैं ?

जि है अतिव्याप्ति, अज्याप्ति और असंभव ।

६४६ प्र०- अतिव्याप्ति किसे कहते हैं ?

ज०- लक्षण का लक्ष्य और अलक्ष्य दोनों में रहना अतिव्याप्ति दोष कहलाता है । जैसे गौ का लक्षण सींग ।

६४७ प्र०- अज्याप्ति किसे कहते हैं ?

ज०- लक्ष्य के परदेश में लक्षण के रहने को अज्याप्ति कहते हैं । जैसे गौ का लक्षण शकलत्व अथवा जीव का लक्षण पञ्चन्द्रियत्व ।

६४८ प्र०- असंभव किसे कहते हैं ?

ज०- लक्ष्य में लक्षण के संभव न होने को असंभव कहते हैं । जैसे अग्नि का लक्षण ठंडापन ।

६४९ प्र०- लक्ष्य किसे कहते हैं ?

याधा हो । जैसे मेरी माता बंध्या है, मैं आजो-
वन मौनव्रतधारी हूँ, या मेरा पिता निस्सन्तान है ।

७२२ प्र०- हेत्वाभास किसे कहते हैं ?

उ०- जो हेतु दोष वाला हो ।

७२३ प्र०- हेत्वाभास के कितने भेद हैं ?

उ०- तीन हैं— असिद्ध, विरुद्ध और अतै-
कान्तिक ।

७२४ प्र०- असिद्ध किसको कहते हैं ?

उ०- जिस हेतु की व्याप्ति, यादी प्रतिवादी
दोनों को, या एक को भी सिद्ध न हो । जैसे
शब्द परिणामी है क्योंकि चाक्षुष है । यहाँ पर
शब्द में चाक्षुषपन प्रमाण से बाधित है, क्योंकि
शब्द श्रोत्रेन्द्रिय का विषय है ।

७२५ प्र०- विरुद्ध हेत्वाभास किसे कहते हैं ?

उ०- साध्य से विरुद्ध पदार्थ के साथ जिस
हेतु की

| | |
|----------------------------------|-----|
| आत्म-व मण्डल मान निरुपण का लक्षण | ३०६ |
| आदेश नाम कर्म का लक्षण | ५४४ |
| आह्वयणी नाम कर्म का लक्षण | ५२५ |
| आप्त का लक्षण | ७०३ |
| आभिप्रायिक मिथ्यात्व का लक्षण | २४३ |
| आभिनिवेशिक मिथ्यात्व का लक्षण | २४५ |
| आभ्यन्तर नियुक्ति का लक्षण | २१ |
| आप्त कर्म का लक्षण | ४४३ |
| आप्त कर्म के भेद | ४६३ |
| आरम्भ का लक्षण | ३०० |
| आवर्जकरण का लक्षण | ५८६ |
| आवली का लक्षण | १५४ |
| आसेपनी शिक्षा का लक्षण | ३६४ |
| आस्तिक्य का लक्षण | २१४ |
| आस्रव तत्र का लक्षण | ४१४ |
| आहकम्मे का लक्षण | ३१४ |
| आहारक वर्गणा का लक्षण | ४२५ |

| | |
|---|-----|
| आहारक शरीर का लक्षण | ४०६ |
| आहारक समुदाय का लक्षण | ४०६ |
| आहार के दोष | ४०७ |
| आहार पर्याप्त का लक्षण | ४०८ |
| इन्द्रियों का लक्षण | ४१२ |
| इन्द्रिय के भेद | ४१६ |
| इन्द्रियजन्य ज्ञान को परोक्ष भी क्यों कहा ? | ४१६ |
| इन्द्रिय पर्याप्त का लक्षण | ४१७ |
| इन्द्रियों और मन की प्राप्यकारिता तथा | |
| अप्राप्यकारिता पर विश्वास | ४१६ |
| इन्द्रियों के भेद | ४२३ |
| इंगाले दोष का लक्षण | ४२८ |
| इंद्र्या भ्रमिति का लक्षण | ४०३ |
| पथार प्रस्रवण का लक्षण | ४०७ |
| रक्ताद् का लक्षण | ४२६ |
| उत्सर्पिणी काल का लक्षण | ४६६ |
| उत्सर्पिणी काल के चारे | ४६६ |

| | |
|--------------------------------------|-----|
| जम्बूद्वीप की मुख्य नदियों की संख्या | १२६ |
| जम्बूद्वीप के बाहर क्या है ? | १२७ |
| जाति नाम कर्म का लक्षण | ४६६ |
| जीव का परिमाण | २३ |
| जीव का लक्षण | ३ |
| जीव के असाधारण पारिणाधिक भाव | २५० |
| जीव के असाधारण भाव कितने हैं ? | ५६६ |
| जीव के भेद | ६ |
| जीव तत्त्व का लक्षण | ४१० |
| जीवत्व गुण का लक्षण | २५१ |
| जीवविषाकी कर्म का लक्षण | ५६२ |
| जीव विषाकी कर्म प्रकृति के भेद | ५६६ |
| जुगुप्सा नोकपाय का लक्षण | ४२६ |
| जुम्भक क्यों कहलाते हैं | ६३ |
| जनमुनियों का रहन सहन और | |
| आचार व्यवहार | ६०५ |
| जोगे (योग पिण्ड) का लक्षण | ३४४ |

| | |
|--------------------------------------|-----|
| ज्ञान की प्रमाणता | ६५१ |
| ज्ञान स्वप्रकाश्य है या परप्रकाश्य ? | ६५२ |
| ज्ञान प्राप्यकारी है या अप्राप्यकारी | ६६४ |
| ज्ञानावरणीय कर्म का लक्षण | ४३६ |
| ज्ञानावरणीय कर्म के भेद | ४४७ |
| ज्ञानावरणीयादि की जघन्य और | |
| उत्कृष्ट स्थिति | ५७८ |
| व्योत्तिपी देवों के भेद | ६४ |
| ठवणा (स्थापना) दोष का लक्षण | ३१८ |
| तत्त्व का लक्षण | ४०८ |
| तर्क का लक्षण | ६७५ |
| तर्कभास का लक्षण | ७१३ |
| तिगिच्छे (चिकित्सा) दोष का लक्षण | ३३५ |
| तिच्छाँलोक का आकार | ११५ |
| तिच्छाँलोक का स्थान | ११२ |
| तिर्यञ्च का लक्षण | ३५ |
| तिर्यञ्च के भेद | ३७ |

| | |
|------------------------------|-----|
| योग का नाम के नाम | १२४ |
| योग मूलतः के नाम | १२४ |
| योगीन्द्र का लक्षण | १२३ |
| योगीन्द्र नाम कर्म का लक्षण | १२३ |
| योगीन्द्र सिद्ध का लक्षण | १२४ |
| योगकाय का लक्षण | १२० |
| योगीन्द्र नाम का लक्षण | १२३ |
| योगीन्द्र शरीर का लक्षण | १२२ |
| योगीन्द्र सामुद्रिक का लक्षण | १२५ |
| यस्यजीव का लक्षण | १२४ |
| यस्य जीव के भेद | १२६ |
| यस्य नाम कर्म का लक्षण | १२६ |
| योगीन्द्र जीव का लक्षण | १२५ |
| दर्शन मोहनीय का लक्षण | १२३ |
| दर्शन मोहनीय के भेद | १२४ |
| दर्शनावरणीय का लक्षण | १२४ |
| दर्शनावरणीय के भेद | १२४ |

| | |
|---------------------------|-----|
| इस उपखण्ड दोष कौन कौन हैं | ३१२ |
| शयन दोष का लक्षण | ३१६ |
| शिशि प्रत का लक्षण | ३६५ |
| दुर्भाग नाम कर्म का लक्षण | ४५४ |
| दुःस्वर नाम कर्म का लक्षण | ४५३ |
| दृष्ट दोष का लक्षण | ३३४ |
| दृष्टान्त का लक्षण | ६८५ |
| दृष्टान्त के भेद | ६८७ |
| देयता का लक्षण | ५६ |
| देयता के भेद | ९० |
| देयों के सप्त भेद | ७५ |
| देशघाती कर्म का लक्षण | ५६३ |
| देशघाती प्रकृति के भेद | ५६७ |
| देशविरति गुण० का लक्षण | ६१८ |
| देशायकामिक प्रत का लक्षण | ४०३ |
| द्रव्य का लक्षण | ६ |
| द्रव्य के भेद | २ |

| | |
|----------------------------|-----|
| वस्तुतः शृणु का लक्षण | १६ |
| द्रव्य निरोध का लक्षण | ७४ |
| द्रव्य पर्याय का लक्षण | १८ |
| द्रव्य पाण के भेद | २ |
| द्रव्य वेद का लक्षण | ४६८ |
| द्रव्यार्थिक नय का लक्षण | ७३३ |
| द्रव्यार्थिक नय के भेद | ७३५ |
| द्रव्येन्द्रिय के भेद | १७ |
| श्रीन्द्रिय जीव का लक्षण | २७ |
| धर्म रुचि का लक्षण | २२६ |
| धर्मास्तिकाय का लक्षण | १०० |
| धार्ष्ट दोष का लक्षण | ३३० |
| धूमे दोष का लक्षण | ३५६ |
| ध्रौव्य का लक्षण | १८८ |
| नपुंसक लिंग सिद्ध का लक्षण | ३८२ |
| नपुंसक वेद का लक्षण | ४८६ |

| | |
|-----------------------------|-----|
| नव का लक्षण | ७३३ |
| नव के भेद | ७३२ |
| नव काश्मिर का लक्षण | ७५३ |
| नव तन्त्रों के नाम | १०६ |
| नामकर्म का लक्षण | ४४४ |
| नामकर्म की प्रकृतिर्ण | ४१४ |
| नाम निक्षेप का लक्षण | ७६६ |
| नारदी का लक्षण | ३३ |
| नाराय मदनन नामकर्म का लक्षण | ५३० |
| निवृत्त शेष का लक्षण | ३४६ |
| निष्प्रेष का लक्षण | ७५५ |
| निक्षेप के भेद | ६६१ |
| निगमन का लक्षण | ७२६ |
| निगमनाभास का लक्षण | ४६ |
| निगोद का लक्षण | ५० |
| निगोद के भेद | ४५४ |
| निद्रा का लक्षण | ४५५ |
| निद्रानिद्रा का लक्षण | |

| | |
|-----------------------------|-----|
| विशेष आरम्भ का लक्षण | ७७५ |
| विशेषण शेष का लक्षण | ३३० |
| विशेषण नाम गुणो का लक्षण | ३०९ |
| विशेषण नाम का लक्षण | ११७ |
| विशेषण लक्षण का लक्षण | ३११ |
| विशेषण नाम कर्म का लक्षण | ५३४ |
| विशेषण इन्द्रिय का लक्षण | १८ |
| विशेषण के भेद | १६ |
| विशेषण का लक्षण | ७१२ |
| विशेषण और व्यापकता का लक्षण | ७७३ |
| विशेषण समाहित के भेद | २३५ |
| विशेषण सम्यक्ता का लक्षण | २८८ |
| विशेषण उचित का लक्षण | २१७ |
| नीचे लोक का आरम्भ | ११० |
| नीचे लोक में रहने वाले | ११३ |
| नीच नय का लक्षण | ७३६ |
| नीचता का लक्षण | ४७४ |

| | |
|---|-----|
| नोकशाप के भेद | ४८० |
| न्यग्रोध परिभाषित संभयान नाम कर्म का लक्षण | ४८६ |
| पत्र का लक्षण | १५७ |
| पञ्चाभास के भेद | ७१५ |
| पद्मीय क्रियायः | ४७६ |
| परमाणु का लक्षण | १४६ |
| परमाणु में वर्णादि संख्या | १४० |
| परमेष्ठी का लक्षण | २२३ |
| परमेष्ठी के भेद | २६४ |
| पराघात नामकर्म का लक्षण | ५२८ |
| परार्थानुमान का लक्षण | ६८१ |
| परार्थानुमान के व्यवयय | ६८२ |
| परिप्रह त्याग महाप्रत का लक्षण | २८४ |
| परिपूर्ण पीपध प्रत का लक्षण | ४०४ |
| परोक्ष ज्ञान का लक्षण | ६६७ |
| परोक्ष प्रमाण के भेद | ६६८ |

| | |
|---------------------------------------|---------|
| पर्याय जीव कोष का पर्याय जीव के लक्षण | १७७ |
| पर्याय नाम का लक्षण | १७८ |
| पर्याय का लक्षण | १७९ |
| पर्याय के भेद | १८० |
| पर्याय का लक्षण | १८६ |
| पर्याय के भेद | १८७-१८८ |
| पर्यायगत नय का लक्षण | ०३४ |
| पर्यायगत नय के भेद | ७३६ |
| पर्यायगत का पर्याय | १६३ |
| पर्याय पर्यायगी मंत्र | २६५ |
| पर्यायगत के भेद | ३१ |
| पर्यायगत जीव का लक्षण | ३० |
| पर्यायगत दोष का लक्षण | ३२० |
| पर्याय कर्म का लक्षण | ५५६ |
| पर्याय तत्त्व का लक्षण | ४१३ |
| पर्याय प्रकृति के भेद | ५७७ |

| | |
|-------------------------------|-----|
| पारमिन्त्रे दोष का लक्षण | ३२२ |
| पारमाधिक प्रत्यक्ष का लक्षण | ६५७ |
| पारमाधिक प्रत्यक्ष के भेद | ६५८ |
| पारिणामिक भाव के लक्षण और भेद | ६०४ |
| पारियट्टण दोष का लक्षण | ३२३ |
| पाद्गुहियाण दोष का लक्षण | ३१६ |
| पाँच मण्डल दोष | ३१३ |
| पिहित्य दोष का लक्षण | ३४६ |
| पुण्य कर्म का लक्षण | ५५८ |
| पुण्य तत्त्व का लक्षण | ४१२ |
| पुण्य प्रकृति के भेद | ५७६ |
| पुद्गल का लक्षण | १४६ |
| पुद्गल के भेद | १४७ |
| पुद्गल परावर्तन का लक्षण | १७१ |
| पुद्गल परावर्तन के भेद | १७२ |
| पुद्गल विपाकी कर्म का लक्षण | ५७० |
| पुद्गल विपाकी कर्म के भेद | ५७१ |

| | |
|------------------------------------|-----|
| पूजा विज्ञान भिन्न का लक्षण | ७८१ |
| पूजा वेद का लक्षण | ४८८ |
| पुत्रियमन्त्रा संघर्ष शेष का लक्षण | ३४० |
| पुद्गलमे शेष का लक्षण | ३१६ |
| पुण्यीक्षण का लक्षण | ३८ |
| पुनर्निपुण्य का लक्षण | ४३३ |
| पुनर्निपुण्य के भेद | ४३८ |
| प्रवृत्ता का लक्षण | ४४६ |
| प्रवृत्ता प्रवृत्ता का लक्षण | ४४७ |
| प्रतिगीयी गुण का लक्षण | २४४ |
| प्रतिष्ठा का लक्षण | ६८३ |
| प्रतीतरसाध्य का लक्षण | ७१६ |
| प्रत्यक्ष का लक्षण और भेद | ६५४ |
| प्रत्यक्ष निराकृत साध्य का लक्षण | ७१८ |
| प्रत्यक्षाभास का लक्षण | ७१० |
| प्रत्यभिज्ञान का लक्षण | ६७० |

| | |
|---|-----|
| प्रत्यभिज्ञान के भेद | ६७१ |
| प्रत्यभिज्ञानाभास का लक्षण | ७१२ |
| प्रत्याख्यानावरणीय चौकड़ी का लक्षण | ४७८ |
| प्रत्येक नामकर्म का लक्षण | ५३६ |
| प्रत्येक बुद्ध का लक्षण | ३७८ |
| प्रत्येक धनस्पति क लक्षण | ४६ |
| प्रथम गुणस्थान वाला आराधक और सम्यग्दृष्टि क्यों नहीं ? | ६१४ |
| प्रदेश का लक्षण | १५१ |
| प्रदेश बंध का लक्षण | ४३६ |
| प्रदेशवच गुण का लक्षण | १६६ |
| प्रध्वंसाभाव का लक्षण | २५६ |
| प्रमत्त विरति गुण० का लक्षण | ६१६ |
| प्रमाण का फल क्या ? | ७०४ |
| प्रमाण के भेद | ६५३ |
| प्रमाण ज्ञान का लक्षण | ६४१ |

| | |
|----------------------------------|-----|
| वाटर और सूक्ष्म कौन कौन है ? | ४३ |
| वाटर का लक्षण | ४४ |
| वाटर के भेद | ४६ |
| वाटर नाम कर्म का लक्षण | ५३७ |
| वाह्य निर्गृत्ति का लक्षण | २० |
| बीज रुचि का लक्षण | २२१ |
| बुद्ध बोधित सिद्ध का लक्षण | ३७६ |
| बुध का तारा कितना ऊँचा है ? | १३८ |
| बृहस्पति का तारा कितना ऊँचा है ? | १४० |
| ब्रह्मचर्य महाव्रत का लक्षण | २८३ |
| भयनोकपाय का लक्षण | ४८५ |
| भवविपाकी कर्म का लक्षण | ४७२ |
| भव विपाकी कर्मप्रकृति का लक्षण | ५७३ |
| भवनशक्ति के भेद | ६१ |
| भव्य का लक्षण | ५६४ |
| भव्य जीव के प्रकार | ५६८ |
| भव्य जीव में कितनी आत्मा | ६१ |

| | |
|-----------------------------|-----|
| मन कितना बड़ा है | ६६५ |
| मनःपर्याप्ति का लक्षण | ८३ |
| मनःपर्याय ज्ञान का लक्षण | ६६२ |
| मनुष्य कहाँ पैदा होते हैं ? | ५७ |
| मनुष्य का लक्षण | ५५ |
| मनुष्यों के भेद | ५६ |
| मनोगुप्ति का लक्षण | २६५ |
| मनोयोग के लक्षण | २८८ |
| मनोवर्गणा का लक्षण | ४२६ |
| मल दोष का लक्षण | ४६८ |
| महाव्रत का लक्षण | २७८ |
| महाव्रत के भेद | २७६ |
| मंगल का तारा कितना ऊपर है ? | १४१ |
| मन्ते दोष का लक्षण | ३४२ |
| माये दोष का लक्षण | ३३७ |
| मारणान्तिकसमुद्घात का लक्षण | ५८४ |
| मार्गणा के लक्षण | ५६० |

| | |
|--|-----|
| माये दोष का लक्षण | ३३८ |
| मालाछडे दोष का लक्षण | ३२६ |
| मारा का लक्षण | १५८ |
| मारा के भेद | १५६ |
| मिथ्यात्व का लक्षण | २४१ |
| मिथ्यात्व के भेद | २४२ |
| मिथ्यात्व के दस भेद | २४८ |
| मिथ्यात्व गुणस्थान का लक्षण | ६१२ |
| मिथ्यात्व भी गुण का स्थान कैसे | ६१३ |
| मिथ्यात्व मोहनीय का लक्षण | ४७१ |
| मिथ्यादृष्टि का लक्षण - | २४६ |
| मिश्र गुणस्थान का लक्षण | ६१६ |
| मिश्र मोहनीय का लक्षण | ४७० |
| मीसजाय दोष का लक्षण | ३१७ |
| मुक्त का लक्षण | १० |
| मुख वस्त्रिका के मुख पर बांधने का कल्प | ६०६ |
| मुख वस्त्रिका के मुख पर बांधने का कारण | ६०७ |

| | |
|---|-----|
| मुख वस्त्रिका के रखने का जैन शास्त्रों में विधान | ६०८ |
| मुख वस्त्रिका का लक्षण | ६०६ |
| मुनि के मूल गुण और उत्तर गुण | ३६२ |
| मुहूर्त का लक्षण | १५५ |
| मुहूर्त (अन्तर्मुहूर्त) का लक्षण | १७३ |
| मूल कर्मों में दोष का लक्षण | ३४५ |
| मोक्ष तत्त्व का लक्षण | ४१८ |
| मोहनीय कर्म का लक्षण | ४४२ |
| मोहनीय कर्म के भेद | ४६२ |
| यति (मुनि) धर्म के भेद | ३६१ |
| यथाप्रवृत्ति करण का लक्षण | २३१ |
| यशःकीर्ति नाम कर्म का लक्षण | ५४५ |
| युग के कितने वर्ष ? | १६२ |
| योग का लक्षण | २८७ |
| योग के भेद | २८६ |
| योजन का प्रमाण | ११६ |

| | |
|------------------------------------|-----|
| लोकान्तिक देवों के भेद | ७३ |
| लोह दोष का लक्षण | ३३६ |
| वचन गुप्ति का लक्षण | २६६ |
| वचन योग का लक्षण | २८६ |
| वज्ररूपम नाराच संहनन नाम० का लक्षण | ५०८ |
| वणीमगे दोष का लक्षण | ३३४ |
| वनस्पतिकाय का लक्षण | ४२ |
| वनस्पति के भेद | ४३ |
| वर्गणा का लक्षण | ४२१ |
| वर्गणा के भेद | ४२२ |
| वर्षा के भेद | २०१ |
| वर्षा नामकर्म का लक्षण | ४२१ |
| वर्षा के मास | १६१ |
| वस्तुत्वगुण का लक्षण | १६५ |
| वायु काय का लक्षण | ४१ |
| वामन संस्था नामकर्म का लक्षण | ५१६ |
| विकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष का लक्षण | ६५६ |

(६६)

| | |
|--|-------|
| वेदनीय कर्म के भेद | १५६ |
| वैक्रिय वर्गणा का लक्षण | १२१ |
| वैक्रिय शरीर का लक्षण | १०० |
| वैक्रिय समुदाय का लक्षण | ५५५ |
| वैमानिक के भेद | ६५ |
| वैसादृश्य प्रत्यभिज्ञान का लक्षण | ६७१ |
| घत का लक्षण | २७६ |
| अत के भेद | २७७ |
| व्यतिक्रम का लक्षण | ३६६ |
| व्यतिरेक दृष्टान्त का लक्षण | ६५६ |
| व्यञ्जन पर्याय का लक्षण | १८० |
| व्यञ्जन पर्याय का भेद | १८१ |
| न्ययहार नय का लक्षण | ७३८ |
| व्ययहार और निश्चय का लक्षण | ७५३ |
| व्ययहार राशि और अव्ययहार राशि का लक्षण | ५१-५२ |
| व्ययहार सम्यक्त्व का लक्षण | २०७ |

(१२)

| | |
|--|-----|
| श्रुता का लक्षण | ६३१ |
| सत्य महाव्रत का लक्षण | ७२१ |
| सपक्ष का लक्षण | ७७० |
| सप्तर्षी का लक्षण | ७५० |
| सप्त ज्योतिषी कितने क्षेत्र में हैं | १४३ |
| सभी तिर्यक्ष क्या पंचेन्द्रिय होते हैं ? | ३६ |
| सम का लक्षण | २१० |
| समकित के आठ आचार | २३४ |
| समचतुरस्र संस्थान नाम० का लक्षण | ५१५ |
| समतल भूमि से तारे कितने ऊँचे हैं । | १३४ |
| समभिरूढ नय का लक्षण | ७४२ |
| समय का लक्षण | १५३ |
| समारम्भ का लक्षण | २६६ |
| समिति का लक्षण | ३०१ |
| समिति के भेद | ३०२ |
| समुच्चय सप्त जीवों में कितनी आत्माएँ हैं | ६० |
| समुद्रघात का लक्षण | ५८० |

| | |
|--------------------------------|-----|
| संरम्भ का लक्षण | २६८ |
| संवर तत्त्व का लक्षण | ४१५ |
| संवेग का लक्षण | २११ |
| संसारी का लक्षण | ११ |
| संसारी के भेद | १२ |
| संस्थान नामकर्म का लक्षण | ५१४ |
| संशय का लक्षण | ७०७ |
| संहनन नामकर्म का लक्षण | ५०७ |
| सागरोपम का लक्षण | १६४ |
| सात नारकियों के गोत्र | ३४ |
| सात नारकियों के नाम | ३३ |
| साता वेदनीय का लक्षण | ४६० |
| सादि संस्थान नामकर्म का लक्षण | ५१७ |
| सादृश्य प्रत्यभिज्ञान का लक्षण | ६७३ |
| साधारण का लक्षण | ४७ |
| साधारण नामकर्म का लक्षण | ५४६ |
| साधु का लक्षण | २७० |

| | |
|--------------------------------|-----|
| स्थावर का लक्षण | १४ |
| स्थावर के भेद | १५ |
| स्थावर नामकर्म का लक्षण | ५४६ |
| स्थापना निक्षेप का लक्षण | ७४७ |
| स्थिति बंध का लक्षण | ४३४ |
| स्थिर नाम कर्म का लक्षण | ५४० |
| स्पर्श के भेद | २०४ |
| स्पर्श नाम कर्म का लक्षण | ५५४ |
| स्मरण का लक्षण | ६६६ |
| स्मरणाभास का लक्षण | ७११ |
| स्वभाव व्यञ्जन पर्याय का लक्षण | १८२ |
| स्वयंबुद्ध सिद्ध का लक्षण | ३७७ |
| स्वलिङ्ग सिद्ध का लक्षण | ३८३ |
| स्ववचननिराकृत साध्य का लक्षण | ७२१ |
| स्वार्थानुमान का लक्षण | ६८० |
| द्वाहय नोकपाय का लक्षण | ४८१ |

(४७)

| | |
|-------------------------|-----|
| दृष्टक संस्थान का लक्षण | ५०० |
| हेतु का लक्षण | ६७७ |
| हेतु के भेद | ६६५ |
| हेत्वाभास का लक्षण | ७२२ |
| हेत्वाभास के भेद | ७२३ |